ऐसा कहकर ब्राह्मणने उसके हिस्सेका भी सत्तू लेकर तिथिको दे दिया। इससे वह ब्राह्मण उन उञ्छवृत्तिधारी धु महात्मापर बहुत संतुष्ट हुआ ॥ ८१ ॥

तात्मा स तु तं वाक्यमिदमाह द्विजर्षभम्।
ग्मी तदा द्विजश्रेष्ठो धर्मः पुरुषविग्रहः ॥ ८२ ॥

वास्तवमें उस श्रेष्ठ द्विजके रूपमें मानव-विग्रहधारी क्षात् धर्म ही वहाँ उपस्थित थे। वे प्रवचनकुशल धर्म तुष्टचित्त होकर उन उञ्छवृत्तिधारी श्रेष्ठ ब्राह्मणसे इस कार बोले—॥ ८२ ॥

द्धेन तव दानेन न्यायोपात्तेन धर्मतः।
थाशक्ति विसृष्टेन प्रीतोऽस्मि द्विजसत्तम।
हो दानं घुष्यते ते स्वर्गे स्वर्गनिवासिभिः ॥ ८३ ॥

'द्विजश्रेष्ठ! तुमने अपनी शक्तिके अनुसार धर्मपूर्वक न्यायोपार्जित शुद्ध अन्नका दान दिया है, इससे तुम्हारे पर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। अहो! स्वर्गलोकमें निवास करने-ले देवता भी वहाँ तुम्हारे दानकी घोषणा करते हैं ॥८३॥

गनात् पुष्पवर्षं च पश्येदं पतितं भुवि।
षिदेवगन्धर्वा ये च देवपुरःसराः ॥ ८४ ॥
तुवन्तो देवदूताश्च स्थिता दानेन विस्मिताः।

'देखो, आकाशसे भूतलपर यह फूलोंकी वर्षा हो रही है। देवर्षि, देवता, गन्धर्व तथा और भी जो देवताओंके अगुणी पुरुष हैं, वे और देवदूतगण तुम्हारे दानसे विस्मित हो तुम्हारी स्तुति करते हुए खड़े हैं ॥ ८४½ ॥

ह्मर्षयो विमानस्था ब्रह्मलोकचराश्च ये ॥ ८५ ॥
गच्छन्ते दर्शनं तुभ्यं दिवं व्रज द्विजर्षभ।

'द्विजश्रेष्ठ! ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले जो ब्रह्मर्षिगण विमानोंमें रहते हैं, वे भी तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते हैं; इसलिये तुम स्वर्गलोकमें चलो ॥ ८५½ ॥

तृलोकगताः सर्वे तारिताः पितरस्त्वया ॥ ८६ ॥
नागताश्च बहवः सुबहूनि युगान्युत।

'तुमने पितृलोकमें गये हुए अपने समस्त पितरोंका उद्धार कर दिया। अनेक युगोंतक भविष्यमें होनेवाली जो तानें हैं, वे भी तुम्हारे पुण्य-प्रतापसे तर जायँगी ॥ ८६½ ॥

ह्मचर्येण दानेन यज्ञेन तपसा तथा ॥ ८७ ॥
संकरेण धर्मेण तस्माद् गच्छ दिवं द्विज।

'अतः ब्रह्मन्! तुम अपने ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, तप तथा संकरतारहित धर्मके प्रभावसे स्वर्गलोकमें चलो ॥८७½॥

द्धया परया यस्त्वं तपश्चरसि सुव्रत ॥ ८८ ॥
स्माद् देवाश्च दानेन प्रीता ब्राह्मणसत्तम।

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मणशिरोमणे! तुम परम श्रद्धाके साथ तपस्या करते हो; इसलिये देवता तुम्हारे दानसे अत्यन्त संतुष्ट हैं ॥ ८८½ ॥

र्वमेतद्धि यस्मात् ते दत्तं शुद्धेन चेतसा ॥ ८९ ॥
कृच्छ्रकाले ततः स्वर्गो विजितः कर्मणा त्वया।

'इस प्राण-संकटके समय भी यह सब सत्तू तुमने शुद्ध हृदयसे दान किया है; इसलिये तुमने उस पुण्यकर्मके प्रभावसे स्वर्गलोकपर विजय प्राप्त कर ली है ॥ ८९½ ॥

क्षुधा निर्णुदति प्रज्ञां धर्मबुद्धिं व्यपोहति ॥ ९० ॥
क्षुधापरिगतज्ञानो धृतिं त्यजति चैव ह।
बुभुक्षां जयते यस्तु स स्वर्गं जयते ध्रुवम् ॥ ९१ ॥

'भूख मनुष्यकी बुद्धिको चौपट कर देती है। धार्मिक विचारको मिटा देती है। क्षुधासे ज्ञान लुप्त हो जानेके कारण मनुष्य धीरज खो देता है। जो भूखको जीत लेता है, वह निश्चय ही स्वर्गपर विजय पाता है ॥ ९०-९१ ॥

यदा दानरुचिः स्याद् वै तदा धर्मो न सीदति।
अनवेक्ष्य सुतस्नेहं कलत्रस्नेहमेव च ॥ ९२ ॥
धर्ममेव गुरुं ज्ञात्वा तृष्णा न गणिता त्वया।

'जब मनुष्यमें दानविषयक रुचि जाग्रत् होती है, तब उसके धर्मका ह्रास नहीं होता। तुमने पत्नीके प्रेम और पुत्रके स्नेहपर भी दृष्टिपात न करके धर्मको ही श्रेष्ठ माना है और उसके सामने भूख-प्यासको भी कुछ नहीं गिना है ॥ ९२½ ॥

द्रव्यागमो नृणां सूक्ष्मः पात्रे दानं ततः परम् ॥ ९३ ॥
कालः परतरो दानाच्छ्रद्धा चैव ततः परा।
स्वर्गद्वारं सुसूक्ष्मं हि नरैर्मोहान्न दृश्यते ॥ ९४ ॥

'मनुष्यके लिये सबसे पहले न्यायपूर्वक धनकी प्राप्तिका उपाय जानना ही सूक्ष्म विषय है। उस धनको सत्पात्रकी सेवामें अर्पण करना उससे भी श्रेष्ठ है। साधारण समयमें दान देनेकी अपेक्षा उत्तम समयपर दान देना और भी अच्छा है; किंतु श्रद्धाका महत्त्व कालसे भी बढ़कर है। स्वर्गका दरवाजा अत्यन्त सूक्ष्म है। मनुष्य मोहवश उसे देख नहीं पाते हैं ॥

स्वर्गार्गलं लोभबीजं रागगुप्तं दुरासदम्।
तं तु पश्यन्ति पुरुषा जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ॥ ९५ ॥
ब्राह्मणास्तपसा युक्ता यथाशक्ति प्रदायिनः।

'उस स्वर्गद्वारकी जो अर्गला (किल्ली) है, वह लोभ-रूपी बीजसे बनी हुई है। वह द्वार रागके द्वारा गुप्त है, इसीलिये उसके भीतर प्रवेश करना बहुत ही कठिन है। जो लोग क्रोधको जीत चुके हैं, इन्द्रियोंको वशमें कर चुके हैं, वे यथाशक्ति दान देनेवाले तपस्वी ब्राह्मण ही उस द्वारको देख पाते हैं ॥ ९५½ ॥

सहस्रशक्तिश्च शतं शतशक्तिर्दशापि च ॥ ९६ ॥
दद्यादपश्च यः शक्त्या सर्वे तुल्यफलाः स्मृताः।

'श्रद्धापूर्वक दान देनेवाले मनुष्यमें यदि एक हजार देनेकी शक्ति हो तो वह सौका दान करे, सौ देनेकी शक्ति-वाला दसका दान करे तथा जिसके पास कुछ न हो, वह यदि अपनी शक्तिके अनुसार जल ही दान कर दे तो इन सबका फल बराबर माना गया है ॥ ९६½ ॥